बस्तर का 'दियारी' लोकपर्व

पूनम

आलोकपर्व दीपावली भारतीय संस्कृति के प्राणदायी विचार 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का प्रगट रूप है। जब छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्रों में देवारी लोकपर्व मनाया जाता है, उस समय के ही आस-पास छत्तीसगढ़ के दक्षिण में स्थित बस्तर क्षेत्र में 'दियारी' तिहार मनायी जाती है। दियारी तिहार के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लाला जगदलपुरी लिखते हैं–

"बस्तर भूमि के वनवासी समाज की अपनी अलग दीपावली मनती है, जिसे 'दियारी-तिहार' कहा जाता है। बस्तर में दियारी तिहार के अंतर्गत लक्ष्मी पूजन नहीं होता। उनका लक्ष्मी पूजन अलग होता है। धान की तैयार फसल को वे लोग लक्ष्मी मानते हैं और धूम-धाम के साथ धान की बालियों को खेत से लाकर उस फसल-लक्ष्मी का विधि पूर्वक विवाह रचाते हैं। नरायन राजा के साथ। इस प्रथा को 'लक्ष्मी जगार' कहते हैं। बस्तर के ग्रामीण परिवेश में 'लक्ष्मी जगार' प्रति वर्ष क्वांर महीने से प्रारंभ होकर अगहन -पूस तक चलता रहता है और 'दियारी तिहार' फसल कट जाने के बाद प्रति वर्ष पूस माह से लेकर माघ पूर्णिमा तक मनाते रहते हैं।"

'लक्ष्मी जगार' में लक्ष्मी का अर्थ है–धान की बालियाँ एवं जगार का अर्थ है–जागरण। लक्ष्मी जगार के विषय में बताते हुए बस्तर लोकसंस्कृति के आधिकारिक विद्वान हरिहर वैष्णव लिखते हैं–

'लक्ष्मी जगार' श्लोक महाकाव्य की मुख्यतः दो शाखाएँ हैं। पहली शाखा 'बेसरा खँदा' (बाज शाखा) के नाम से जानी जाती है, जिसका प्रचलन कोंडागाँव के आस-पास है, जबकि दूसरी शाखा 'जम खँदा' (यम शाखा) कहलाती है, जिसका प्रचलन जगदलपुर के साथ-साथ कोंडागाँव के आस-पास भी है। नारायणपुर में भी दोनों शाखाओं का प्रचलन मिलता है, तथापि थोड़ी भिन्नता क्षेत्र के हिसाब से पायी गयी है। 'बेसरा खँदा' में नरायन राजा बेसरा पक्षी ले कर चिड़ियों का शिकार करने जाते हैं और इसी दौरान उनकी भेंट माहालखी यानी महालक्ष्मी (अर्थात् धान) से होती है। फिर नरायन राजा माहालखी से विवाह करने की जिद ठान लेते हैं और अन्ततः उन दोनों का विवाह हो जाता है, जबकि नरायन राजा की पहले से ही 21 रानियाँ होती हैं। ये रानियाँ हैं, कोदो, कुटकी, सरसों, अरहर, मूँग, उड़द, चना, बड़रा (मटर) आदि मोटे तथा दलहनी अन्न। ये 21 रानियाँ माहालखी को तरह-तरह के कष्ट देती हैं, जिससे दुखी होकर वे नरायन राजा का महल छोड़ कर अन्यत्र चली जाती हैं। उनके वहाँ से जाने के साथ ही नरायन राजा का महल सूना हो जाता है। फलतः वे और उनकी 21 रानियाँ और भाई बलराम भूख से व्याकुल हो जाते हैं और माहालखी की खोज करने लगते हैं। अंततः नरायन राजा माहालखी को मना-बुझा कर वापस लाने में सफल हो जाते हैं। उनकी वापसी के साथ ही महल धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाता है। इस शाखा की कथा में पारबती रानी द्वारा वर्षा के लिए भीमा देवता का विवाह, फिर संतान-प्राप्ति और कीर्तिवान होने के उद्देश्य से संतानहीन मेंगिन रानी (वर्षा के देवता मेघ राजा की पत्नी) द्वारा सरोवर खनन और सरोवर के तट पर आम के

बीजारोपण का प्रसंग आता है। फिर जब आम अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलदार होता है तब उसके विवाह का प्रसंग भी इसी कथा में गाया जाता है। इसके साथ ही, सरोवर का भी विवाह संपन्न होता है। अंत में होता है माहालखी और नरायन राजा का विवाह।

'जम खँदा' की कथा 'बेसरा खँदा' की कथा से थोड़ी भिन्न है। इस शाखा में भी कथा तो माहालखी और नरायन राजा की ही है, किंतु इसमें मुख्य भिन्नता है माहालखी का तीन बार जन्म लेना और नरायन राजा के साथ विवाह के पूर्व जम राजा यानी यमराजा के साथ अपूर्ण विवाह।

दोनों ही शाखाओं की कथा में माहालखी द्वारा नरायन राजा का महल छोड़ कर अन्यत्र चले जाने एवं इस कारण नरायन राजा और उनकी रानियों तथा भाई बलराम पर दुखों के पहाड़ टूट पड़ने की कथा है। दोनों ही शाखाओं की कथाएँ लोक-मानस की अद्भुत रचनाएँ कही जा सकती हैं, जिनके रचयिता का कोई पता नहीं। बस ! जगार गायिकाएँ यानी गुरुमाएँ इसे वाचिक परंपरा के सहारे गाती चली आ रही हैं। हरिहर वैष्णव जी लक्ष्मी जगार के विषय में अपने आलेख में लिखते हैं–"लक्ष्मीजगार की कथा में प्रायः क्षेत्रीय भिन्नता है। जगदलपुर क्षेत्र में गाये जाने वाले जगार ओड़िया के लक्ष्मीपुराण से उद्भूत हैं, जबकि कोंडागाँव क्षेत्र में गाये जाने वाले लक्ष्मीजगार पर पुराण की कोई छाप नहीं है। कोंडागाँव की गुरुमाएँ सुखदई कोराम लक्ष्मीपुराण से उद्भूत जगार को जमखँदा यानी यमशाखा तथा लक्ष्मीपुराण से इतर प्रचलित जगार को बेसराखँदा यानी बाजशाखा के रूप में वर्गीकृत करती हैं। ऊपर वर्णित कथा-सार बेसराखँदा यानी बाजशाखा से ली गयी है।

सरगीपालपारा (कोंडागाँव) की गुरुमाएँ सुकदई कोराम, गागरी कोराम, सोमारी, रामदई और पलारी की गुरुमाएँ कमला कोराम, घोड़-सोड़ा की गुरुमाएँ सनमती तथा बम्हनी की गुरुमाएँ आसमती एवं जानकी द्वारा गाये जाने वाले लक्ष्मी जगार तथा डोंगरीगुड़ा (कोंडागाँव) की गुरुमाएँ अम्बिका वैष्णव एवं मुलमुला की गुरुमाएँ मँदनी पटेल द्वारा गाये जाने वाले लक्ष्मी जगार की कथा में बहुत अंतर है। सरगीपालपारा एवं पलारी की उपर्युक्त गुरुमाओं द्वारा गाये जाने वाले लक्ष्मी जगार की कथा का उद्गम कोई भी पुराण या शास्त्र नहीं है। यह पूरी तरह मौलिक है। इसका कोई शास्त्रीय आधार नहीं है, जबकि डोंगरीगुड़ा एवं मुलमुला की गुरुमाओं द्वारा गाये जाने वाले लक्ष्मी जगार में पौराणिकता का पुट है। ये गुरुमाएँ कहती हैं कि इनके द्वारा गायी जाने वाली कथा का उद्गम ओड़िया के लक्ष्मी पुराण से हुआ है। खोरखोसा, बस्तर, सिंगनपुर (जगदलपुर) आदि गाँवों में गाये जाने वाले लक्ष्मी जगार की कथा भी ओड़िया के लक्ष्मी पुराण से अनुप्राणित है। यह बात अलग है कि यत्र-तत्र पौराणिकता से इतर आख्यान भी इसमें जुड़ गये हैं, तथापि कथा का उत्स तो ओड़िया का लक्ष्मी पुराण ही है, किंतु रोचक तथ्य यह है कि संस्कृत में रचित पुराणों की सूची में लक्ष्मी पुराण का कोई उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः निम्न 18 मुख्य एवं 2 अन्य, इस तरह कुल 20 पुराण बताये गये हैं: 1. विष्णु पुराण, 2. नारद पुराण, 3. भागवत् पुराण, 4. गरुड़ पुराण, 5. पद्म पुराण, 6. वराह पुराण, 7. मत्स्य पुराण, 8. कूर्म पुराण, 9. लिंग पुराण, 10. शिव पुराण, 11. स्कन्द पुराण, 12. अग्नि पुराण, 13. ब्रह्म पुराण, 14. ब्राड पुराण, 15. ब्रह्मवैवर्त पुराण,

16. मार्कण्डेय पुराण, 17. भविष्य पुराण, 18. वामन पुराण, 19. वायु पुराण,

20. हरिवंश पुराण। ओड़िया में प्रचलित लक्ष्मी पुराण (लख्मी पुराण) वस्तुतः ओड़िया साहित्यकार इन्द्रमणि साहू की रचना है। लगभग 150 पृष्ठों की इस पुस्तक का प्रकाशन 1965 ई. में शारदा प्रेस, कटक (ओडिसा) से हुआ था। दरअसल रचनाकार ने 46 अध्यायों में संयोजित अपनी इस रचना का आधार या तो स्कन्द पुराण या फिर विष्णु पुराण को बनाया है, यह कहा जा सकता है। इधर हाल ही में ओड़िया का एक और लक्ष्मी पुराण देखने में आया है, जिसके लेखक का नाम इस पुस्तक में नहीं दिया गया है।

“सरगीपालपारा एवं पलारी की गुरुमाओं की गुरु थीं सरगीपालपारा (कोंडागाँव) की आयती एवं दुआरी। आयती एवं दुआरी की गुरु थीं बम्हनी (कोंडागाँव) की मिरगान जाति की एक महिला। संयोग से ये सभी गुरुमाएँ अछूत वर्ग से ही संबंध रखती थीं।" लक्ष्मी जगार के विषय में सारांश बताते हुए हरिहर वैष्णव जी आगे बताते हैं–

'जगार' का अर्थ कुछ लोग 'जागरण', 'जागृति' या 'चेतना' बताते हैं, तो कुछ लोग 'यज्ञ'। गुरुमांओं, यानी जगार गायिकाओं के अनुसार जगार का अर्थ 'जग' यानी 'यज्ञ' ही है। 'महायज्ञ', जिसके माध्यम से गुरुमाएँ देवी-देवताओं का आह्वान करती हैं, उन्हें जगाती हैं और उनकी पूजा-अर्चना करती हैं, उनका गुण-गान करती हैं, उनकी गाथा गाती हैं।

वे कहती हैं–

“जगार बल्लो ने जग आय। तेबेय तो हामी 'जग मँडाउँसे' नाहले 'जग मँडालुँसे बलुँसे।”

जगार कहने का अर्थ यज्ञ है। तभी तो हम 'यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं' या (हमने) 'यज्ञ का आयोजन किया है' कहते हैं।

यही कारण है कि इन सभी जगारों के गायन के आरंभ में ही गुरुमाएँ विभिन्न देवी-देवताओं का आह्वान करती हुई उन्हें जागने और इस यज्ञ में आने का न्योता देती हैं। लक्ष्मी जगार की बानगी देखिए–

लक्ष्मी जगार : ग्राम खोरखोसा, तहसील एवं जिला बस्तर निवासी गुरुमाएँ केलमनी द्वारा पहले अध्याय (सुमरनी) का एक अंश–

अध्याय-1—सुमरनी

“हरि बोल हरि बोल राम-रामो

हरि बोल हरि बोल राम-रामो

सेई बले सालिगराम परभू

सेई बले सिता तो राम

हरि-हरि बोली जागयँ परभू

मोर राम बोली बयठयँ।”

अध्याय-1—सुमरनी

“हरि बोलो हरि बोलो राम-राम

हरि बोलो हरि बोलो राम-राम

वे तो सालिग्राम प्रभु

वे तो सीता और राम

हरि-हरि बोलते जागें प्रभु

राम बोलते बैठें।”

'लक्ष्मी जगार' का संबंध जुड़ता है, धान्य-देवी की अभ्यर्थना से उनके आह्वान से और उत्पादकता से। अनुत्पादकता से उत्पादकता की ओर बढ़ने की प्रकिया से। इस जगार का संबंध जुड़ता है, मोटे अनाजों (मँडिया, कोदो, कुटकी, सावाँ आदि इक्कीस किस्म के अनाजों, जिसमें दलहनी और तिलहनी उपज भी सम्मिलित हैं) और धान के बीच के संघर्ष से, जिसमें धान को स्थापित होने देने में पग-पग पर मोटे अनाजों द्वारा व्यवधान पैदा किया जाता है। धान्य-देवी अर्थात् लक्ष्मी (लक्ष्मी) को उपर्युक्त इक्कीस अनाजों (जिन्हें इस जगार में इक्कीस रानियाँ कहा गया है) द्वारा असहनीय कष्ट देने और उन कष्टों को भोगते हुए भी अपना स्थान बनाने की अद्भुत महागाथा है, 'लक्ष्मी जगार'।

'दियारी तिहार' मुख्य रूप से बस्तर के मैदान जहाँ धान उत्पादन होता है वहाँ प्रमुखता से मनायी जाती है।

दियारी का तिथि निर्धारण

'दियारी तिहार' का तिथि निर्धारण माटी देव गुड़ी का पुजारी, जिसे बस्तर में गाँवों का मुखिया होने का दर्जा प्राप्त होता है। वह माटी देव गुड़ी का पुजारी अन्य गाँवों के पुजारियों के साथ बैठक आयोजित कर 'दियारी तिहार 'की तिथि तय करते हैं। बस्तर क्षेत्र के अलग-अलग गाँवों में 'दियारी तिहार' पूस माह से माघ पूर्णिमा तक अलग-अलग तिथि में मनायी जाती है। इसलिए इन महीनों में लगभग हर दिन किसी-न-किसी गाँव में 'दियारी तिहार' का उत्सव बस्तरवासी मनाते हैं।

दियारी तिहार का मुख्य आकर्षण धोरई

दियारी तिहार के मुख्य केंद्र 'धोरई' होते हैं। छत्तीसगढ़ के मैदान में, जिस तरह गोवर्धन पूजा और मातर तिहार के मुख्य आकर्षण केंद्र राउत बंधु होते हैं। ठीक वैसे ही 'दियारी तिहार' में 'धोरई'। 'धोरई' बस्तर में

गाय-बैल में चरवाहे को कहा जाता है। छत्तीसगढ़ के मैदान में चरवाहे का कार्य 'राउत' जाति के लोग करते हैं, वहीं बस्तर क्षेत्र में यह कार्य अधिकांश रूप में 'माहरा' जाति के लोग करते हैं।

'दियारी तिहार' का उत्सव रूप भी छत्तीसगढ़ के मैदानों में मनाये जाने वाले गोवर्धन पूजा और मातर तिहार की तरह ही होता है। बस लोकरंग में अंतर है। बस्तर में 'दियारी तिहार' में लोकपर्व का विशुद्ध रूप दिखायी देता है, जबकि छत्तीसगढ़ के मैदानों में मनायी जाने वाली 'देवारी' में बाजार के प्रभाव के कारण लोक का रंग दिन-ब-दिन फीका पड़ रहा है।

'दियारी तिहार' किसानी संस्कृति के आधार पशु धन के सम्मान का लोकपर्व है। धोरई और पशु मालिक के बीच आपसी समन्वय और सदाशयता का उत्सव है।

प्रथम दिवस

पशु धन मालिकों का सम्मान और पशु धन को जेठा और चुई का शृंगार

'दियारी तिहार' के प्रथम दिवस धोरई पशु मालिकों को अपनी हैसियत के अनुसार खिला-पिलाकर सम्मान करता है। 'दियारी तिहार' के प्रथम दिवस को छत्तीसगढ़ के मैदानों में, जिस प्रकार राउत बंधुओं द्वारा गोवर्धन पूजा के दिन पशु धन को सोहई पहनाते हैं और पशु-मालिकों के आँगन में दीपदान करते हैं। बस्तर क्षेत्र में दियारी का रूप भी इससे मिलता-जुलता है–"दिन में पशुओं के मालिकों को पिला-खिला कर, धोरई रात में उनके घर 'गेठा' बांधने जाता है। 'गेठा' को जेठा भी कहते हैं। कोठों (पशु शालाओं) तक वह बाजे-गाजे के साथ पहुँचता है और प्रत्येक कोठे के प्रत्येक जानवर के गले में बांधता है। सन् रस्सी से बनी इन मालाओं को धोरई स्वयं तैयार करता है। पलाश जड़ की रस्सी से भी मालाएँ बनायी जाती हैं। बैलों और गायों की अलग-अलग प्रकार की मालाएँ होती हैं। बैल की माला 'जेठा' और गाय की 'चुई' या 'छुई' कहलाती है।... धोरई को प्रत्येक घर से जेठा बांधने का पारिश्रमिक थोडा-सा धान मिल जाता है।"

द्वितीय दिवस

गोड़धन-पूजा

छत्तीसगढ़ के मैदानों में, जिसे हम गोवर्धन पूजा कहते हैं उसे बस्तर में गोड़धन पूजा कहा जाता है। दूसरे दिन धोरई गाय-बैलों को पशु मालिकों के घर जाकर खिचड़ी खिलाता है। पशुओं को लाल तिलक लगाकर पुष्प से पूजन किया जाता है। पशु धन को प्रणाम करते हुए खिचड़ी खिलायी जाती है। खिचड़ी में चावल और सब्जी और अनेक भाजी के टुकड़े के अलावा अरहर, उड़द, मूँग की दाल डाली जाती है।

गोड़धन पूजन के बाद धोरई बाजे गाजे के साथ पशु मालिकों के घर जाते हैं वहाँ धोरई को सम्मान में राशि या अन्न भेंट किया जाती है।

तृतीय दिवस

गोठान पूजा

गोठान अर्थात् वह खुला स्थान जहाँ गाँव भर के पशुधन इकट्ठा होते हैं और आराम करते हैं। गोठान के आस-पास पशुओं को धोरई चराता है और वह भी अपनी पत्नी या बच्चे के द्वारा लाये गए पेज को पीकर पशुओं के साथ दिन में आराम करता है। पेज उस पेय को कहा जाता है, जो मांडिया (मांड) और कनकी (चावल के टुकड़े) को मिलाकर बनाया जाता है। गोठान का भी देवता होता। है। बस्तर में ऐसी मान्यता है। गोठान देव पशुधन की सब प्रकार से रक्षा करता है। इस देव को 'गोठान देव' कहा जाता है।

गोठान पूजा के समय पशु मालिक अपने पशुओं के सींगों पर लंबे-लंबे नये कपड़ों के सिंगोटी बाँधकर धूम-धाम से गोठान पहुँचते हैं। सिंगोटी अर्थात् बैल के सींग पर पहनायी जाने वाली पगड़ी। गाँव की गृहणियाँ भी इस कार्यक्रम में शिरकत करती हैं। वे नये कपड़े और धान या कोई भी अन्न या फल लेकर गोठान में उपस्थित होती हैं। गाँव के समस्त लोगों द्वारा लाये गए अन्न का ढेर बनाया जाता है। इसके पश्चात् सभी भेंट गोठान देव को अर्पित करते हुए, पूरे मनोयोग से पूजा की जाती है। गोठान देव को पूजन के दौरान शराब चढ़ायी जाती है और मुर्गे की बलि दी जाती है। सभी भेंट आखिर में धोरई अपने पास रख लेता है। पूजन के अंत में पशुपालक अपने बैलों को पूजन स्थल से दौड़ा देता है। उसे पकड़ने धोरई भी दौड़ता है और बैलों को पकड़कर नये सिंगोटी पर भी अधिकार कर

लेता है।

कार्यक्रम के आखिरी हिस्से में धोरई और पशुधन मालिक गोठान में प्राप्त राशि और अन्न का बहुत बड़ा हिस्सा धोरई को देकर बचे हुए राशि से सब मिलकर उत्सव मनाते हैं। इस उत्सव का मुख्य आकर्षण बस्तर बियर 'सल्फी' का सामूहिक सेवन होता है। इस उत्सव को 'बासी-तिहार' कहा जाता है। इस बासी तिहार में पशुचारक, पशुपालक और पूरे ग्रामवासी नशे में मस्त होकर गाते और नाचते हुए हुल्लड़ मचाते हैं।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जब स्थानीयता के सौंदर्य की मूल लोकभाषाएँ खतरे में हैं। हमारे लोकतांत्रिक देश में 'भाषाओं का लोकतंत्र' प्रश्न के घेरे में है। लोकतांत्रिक व्यवस्था का स्वभाव लोकभाषाओं के संरक्षण तक दिखायी देना चाहिए, तभी लोकतंत्र की परिभाषा कर्म में तब्दील होगी। लोकतंत्र का 'लोक' बचेगा तभी 'तंत्र' लोक कल्याणकारी होगी। लोकपर्व को बचाना, लोकगीतों को बचाना है और इस रूप में लोकभाषाओं को भी। लोकगीत बचेंगे तभी एक अनुभव संसार बचेगा। देवारी, दियारी और सोहराई जैसे लोकपर्व भूमण्डलीकरण की एकरूपता के नारे के बरक्स स्थानीयता का उत्सव है। ग्लोबल विलेज की भूल-भुलैय्या को छोड़कर अपने स्वत्व की विनम्र घोषणा है।

सन्दर्भ

1. बस्तर इतिहास एवं संस्कृति-लाला जगदलपुरी, मध्यप्रदेश ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण-1994

2. बस्तर का आदिवासी एवं लोक संगीत-हरिहर वैष्णव, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नयी दिल्ली प्रथम संस्करण-2013

पूनम, सहायक आचार्य,

गुरुनानक इंस्टिट्यूट ऑफ हायर एजुकेशन, मुरथल,

सोनीपत, हरियाणा